भीलांचल में खेल : आवश्यकताएँ और संभावनाएँ

❑ माँगीलाल सोलंकी

अभी दो वर्ष ही गुजरे हैं - झाबुआ को दो हिस्सों में बँटे हुए। जब यह एक था तब भी किसी को कभी यह एहसास नहीं होता था कि भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक स्तर पर इनमें कोई भेद है। जो तीज़-त्यौहार और रहन-सहन भील आदिम-समुदाय में झाबुआ में है, वही अलीराजपुर में भी। यही दशा व दिशा सर्वत्र भूमि की भी है। यहाँ भी पथरीली व बंजर भूमि है तो वहाँ भी। विंध्य की छोटी-बड़ी पहाड़ी-श्रृंखलाएँ दोनों के ही भाग्य-दुर्भाग्य को संरचित करती हैं। हाँ, इधर भील व पटलियों की अधिसंख्या है, तो उधर भिलाला, नामकड़ा तथा धानकड़ों की मूल खाँप है भील और अन्यान्य हैं इसकी शाखाएँ। भीलों की बोली है भीली तो भिलालों की भिलाली। दोनों हल्का-सा अंतर लिए हुए हैं। दोनों जिलों में कुल जनसंख्या में से 90 प्रतिशत हिस्सा भील-भिलालों का ही है। दोनों की आजीविका सदियों से कृषि पर ही अवलंबित है, यह भी नितांत पारंपरिक। इसके उपरांत दूसरे आधार हैं– मजदूरी तथा वनोपजें। फिर इस वृहद भीलांचल को दो हिस्सों में क्यों बाँटा गया? कदाचित प्रशासकीय दृष्टि से।

रस्सी कूदती हुई बालिका

यूँ धार, रतलाम, खरगोन व खण्डवा जिलों में भी इस आदिम समाज की जनसंख्या कम नहीं है। समग्र दक्षिण-पश्चिमी मध्यप्रदेश सर्वत्र इसी से भरा पड़ा है। वन्य जीवन होने से ये लोग श्रमशील तथा अभावग्रस्त हैं। स्वभावतया इनमें जीवन्तता, ऊर्जस्विता और प्रतिरोध-क्षमता की कमी नहीं है। आज भी यह प्रश्न अनुत्तरित है कि इस जनजाति की इस खूबी का उपयोग कहाँ और कैसे किया जाए? हालाँकि इस प्रश्न का समुचित समाधान है, पर इस पर कोई ध्यान देना नहीं चाहता, इस पर आध्रत उपयुक्त नियोजन कोई करना नहीं चाहता। पचास और साठ के दशक में जिला मुख्यालय झाबुआ नगर में जिला ओलम्पिक का आयोजन किया जाता था स्थानीय पुलिस ग्राउण्ड पर। इसमें तीरन्दाजी, कबड्डी, लम्बी दौड़, बाधा दौड़, लंबी कूद, खो-खो, भाला फेंक, गोला फेंक आदि खेल स्पर्धाएँ

फुटबाल खेलते बच्चे

कबड्डी खेल का एक दृश्य

संपन्न करवाई जाती थीं। इसमें अलीराजपुर, जोबट, भाभरा, कट्ठीवाड़ा, राणापुर, थाँदला आदि नगरों से आदिवासी छात्र-छात्राएँ भारी तादाद में भाग लेते थे। हफ्तेभर भारी चहल-पहल और गहमा-गहमी बनी रहती थी। इसके पूर्व विकासखण्ड व तहसील स्तरों पर ये स्पर्धाएँ संपन्न करवाकर चयन प्रक्रिया संपादित की जाती थी और इस ओलम्पिक में छात्र-छात्राएँ अपने-अपने विद्यालयों का प्रतिनिधित्व करते थे। इसमें चयनित छात्र-छात्राएँ संभागीय व राज्य स्तर पर प्रतिनिधित्व करते थे। यह आयोजन बस कुछ ही वर्ष चला और फिर एकाएक बन्द हो गया। हालाँकि ये स्पर्धाएँ आज भी विभिन्न स्तरों पर प्रतिवर्ष संपन्न करवाई जाती हैं, पर उसमें वह उत्साह, गहमा-गहमी और गरिमा नहीं रही। खासकर नगरजनों को तो इस बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं हो पाता, फिर इनकी सहभागिता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस आयोजन को पुनर्जीवित करने के संबंध में दोनों जिलों को समन्वित रूप से प्रशासकीय स्तर पर सोच-विचार करना चाहिए।

आज भी आदिवासी बालक-बालिकाएँ पारंपरिक खेल जैसे कबड्डी, तीरन्दाजी आदि अपने-अपने गाँव-फलियों, विद्यालयों के क्रीड़ांगनों आदि में खेलते रहते हैं, केवल आत्मतुष्टि और मनोरंजन के लिए ही। आधुनिक प्रभावों के कारण कई पारंपरिक खेल विस्मृत भी हो चुके हैं। भील-परिवारों में बालक-बालिकाएँ भी आर्थिक इकाई होते हैं। वे खेतों में कार्य करके तथा पशु चराने का कार्य करके परिवार के कार्यभार को कम करते हैं। कुछ तो होटलों में काम करके तथा जहाँ-तहाँ मजदूरी करके यत्किंचित कमाई भी करते हैं। परिजन इन सबके कारण इन्हें विद्यालय भेजना उपयुक्त नहीं समझते। इससे भी एक सर्वोपरि कारण है मजदूरी के लिए भीलों का पलायन। किशोर, अल्पायु बालक-बालिकाएँ आदि शामिल हैं। इस स्थिति में इनके बालक-बालिकाओं को कैसे और कहाँ पढ़ाया जाए? इन अवरोधों को दूर करने के बारे में गहन सोच-विचार तथा सार्थक पहल की आवश्यकताएँ हैं। स्कूल नहीं तो खेल नहीं और खेलों में प्रशिक्षण संभव नहीं।

गाँव का पारम्परिक खेल गिल्ली-डंडा

इन अंचलों में उच्चतर व उच्च विद्यालयों में पी.टी.आई. की व्यवस्था है। ये नियमित रूप से पी.टी. के साथ-साथ छात्र-छात्राओं को फुटबाल, वॉलीबाल, हॉकी, कबड्डी जैसे खेल खिलवाते भी हैं। तब भी खेलोपकरणों का अभाव सर्वत्र देखा जा सकता है। इनकी पूर्ति आवश्यक है। ये छात्र-छात्राएँ तहसील, जिला, संभाग व राज्य स्तर की स्पर्धाओं में हिस्सा भी लेते हैं। इसके बावजूद व्यवस्थित व नियमित प्रशिक्षण के अभाव में ये आगे नहीं बढ़ पाते हैं। हालाँकि उपर्युक्त जिलों में वर्ष 1966 से ही शिक्षा व खेलों का संचालन आदिम जाति कल्याण विभाग के अंतर्गत चल रहा है। यह विभाग विशेष रूप से इन बच्चों के उन्नयन के लिए ही गठित किया गया है।

इसके अतिरिक्त पुलिस विभाग में भी आदिवासी युवक विभिन्न पदों पर पर्याप्त तादाद में हैं। इस विभाग में भी खेल-परिसर पृथक से है और इसमें भी खेल-शिक्षक व खेल-प्रशिक्षक होते हैं। विभिन्न खेलों के लिए इस संकाय को भी बजट आवंटित किया जाता

खो-खो खेलते खिलाड़ी

है। पर इसका भी पर्याप्त अवदान आदिवासी छात्र-छात्राओं को नहीं मिल रहा है। इस ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। खासकर जिला स्तर पर, क्योंकि यह संकाय जिला स्तर पर पुलिस अधीक्षक कार्यालय से जुड़ा हुआ है। स्मरणीय है कि पूर्व में जिला ओलम्पिक की व्यवस्था यह कार्यालय ही करता था और पुलिस जवानों की टीमें भी विभिन्न स्पर्धाओं में उतरती थीं। इस संकाय के कारण जिले में आदिवासी युवक-युवतियों व छात्र-छात्राओं को खेल-प्रोत्साहन अधिकाधिक मिलना चाहिए।

इस भीलांचल के आदिवासी बालक-बालिकाओं को यदि शैशव से ही विभिन्न स्तरों पर विभिन्न खेलों का शिक्षण-प्रशिक्षण नियमित रूप से मिलता रहे तो ये राज्य व राष्ट्र-स्तरों पर तीरन्दाजी, दौड़, जम्प, भाला फेंक आदि खेलों में अपनी नैसर्गिक व आभिजात्य क्षमताओं का उत्कृष्ट प्रदर्शन कर सकते हैं। स्वातंत्र्य प्राप्ति के पश्चात अनेक आदिवासी युवक-युवतियों ने इस क्षेत्र से विभिन्न खेलों में अपनी प्रतिभा का कुशल प्रदर्शन किया है और अपने-अपने विद्यालयों को प्रतिष्ठा भी दिलाई है। इनकी नैसर्गिक ऊर्जा और स्फूर्ति वॉलीबाल, फुटबाल, हॉकी जैसे खेलों में भी अपना जौहर दिखा सकती है। अब समय आ गया है कि इन दोनों जिलों में शिक्षा के साथ-साथ ही खेल-सुविधाओं, उपकरणों और अवसरों को उपलब्ध कराया जाए, खासकर तीरन्दाजी के क्षेत्र में। वैसे तो तीर-कामठी, धारिया, फालिया, तलवार, गोफन आदि इनके परम्परागत हथियार हैं। आज भी ये इनका इस्तेमाल विभिन्न अवसरों पर करते हैं। तीर-कामठी तो इनका जातीय प्रतीक-चिन्ह है। आज से पचास वर्ष पूर्व प्रत्येक भील-भिलाला हर कहीं इसे हाथ में लेकर चलता था, लेकिन अपराधों में कमी लाने की दृष्टि से जिला प्रशासन ने कुछ वर्ष पूर्व इसे अपने पास रखने व यहाँ-वहाँ लाने-ले जाने पर प्रतिबंध लगा दिया है। इसके बावजूद भील बालक बचपन से ही इस पर निशाना साधने का अभ्यास करने लगता है, वह भी समूह में व खेल-खेल में। आज भी इस अंचल में भील बालक चिड़िया पर अचूक-संधान कर लेते हैं। इस दृष्टि से तीरंदाजी में यहाँ से उत्कृष्ट प्रतिभाओं को प्राप्त किया जा सकता है। जरूरत है तो केवल इन बालकों व तरुणों को नियमित अभ्यास कर परिमार्जित करने की। जिला प्रशासन व प्रदेश शासन को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। विशेष रूप से आदिम जाति कल्याण विभाग व पुलिस विभाग, कोई न कोई सार्थक पहल इस दिशा में करें।

भील-भिलालों के जीवन में सदियों से चला आ रहा संघर्ष है। प्रबल व प्रखर जिजीविषा व जीवंतता है। क्षमता, सहिष्णुता व धैर्य है। श्रम व नैसर्गिक संस्फूर्ति है। ये समस्त सत्‌गुण व उपादान विभिन्न खेलों में उत्कर्ष पा सकते हैं, अपना जौहर दिखा सकते हैं और अपना नाम रोशन कर सकते हैं। इन्हें बस विस्तृत आकाश भर दीजिये... ये विविध क्षितिजों पर स्वयं ही जा बैठेंगे... विभिन्न खेल-स्पर्धाओं को इन आदिम प्रतिभाओं पर बेइन्तहा नाज़ व फक्र होगा..।

सभी छायाचित्र : संजय कुमार

सितौलिया खेलते बच्चे

(लेखक जनजातीय विषयों के विशेषज्ञ हैं।)